डॉ. दीपक सिंह

वर्तमान में राजीव गांधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय अम्बिकापुर में सहायक प्राध्यापक हिन्दी के पद पर कार्यरत हैं। शुरुआती शिक्षा गांव से लेने के बाद उन्होंने स्नातक से लेकर पीएचडी तक की अपनी पढ़ाई इलाहाबाद विश्वविद्यालय से की है। अध्ययन-अध्यापन में गहरी रुचि।

डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय

राजीव गांधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय अंबिकापुर में हिंदी के असिस्टेंट प्रोफेसर हैं। प्रारंभिक शिक्षा गांव और रीवा से। आगे की पढ़ाई इलाहाबाद विश्वविद्यालय से। जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली से पीएचडी की उपाधि। आदिवासी जीवन के विभिन्न पहलुओं पर कई शोध आलेख प्रकाशित। आदिवासी जीवन और संस्कृति पर गंभीर अध्येता की छवि।

मूल्य : ₹ 350/-

रुद्रादित्य प्रकाशन
190 एफ-आर/3-ए, ओ.पी.एस. नगर, कालिन्दीपुरम,
प्रयागराज (उ.प्र.) पिन-211011 फोन 8187937731

ISBN 978-81-19335-59-6

साहित्य और पर्यावरण
डॉ. दीपक सिंह | डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय

साहित्य और पर्यावरण

संपादक
डॉ. दीपक सिंह
डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय

है। बीसवीं शदी के तीसरे दशक में ही जयशंकर प्रसाद ने अपनी कालजयी कृति कामायनी के माध्यम से समूची मानवजाति को भोग और विलास की संस्कृति के खतरे के खिलाफ चेतावनी देते हुए प्राकृतिक जीवन-दर्शन की रूप-रेखा हमारे सामने प्रस्तुत की थी लेकिन हमारी सत्ता संरचना ने उसका संज्ञान नहीं लिया—

बधी महावट से नौका थी, सूखे में अब पड़ी रही
उतर चला था वह जल-प्लावन, और निकलने लगी मही
निकल रही थी मर्म वेदना करुण विकल कहानी सी,
वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही, हँसती सी पहचानी सी !

अतिशय भोग और लालसा ने ही देव सभ्यता का विनाश किया था। यह त्रासदी ही कही जाएगी कि हमने कामायनी जैसी बौद्धिक उपलब्धि से कुछ नहीं सीखा। साथ ही गाँधी जी द्वारा प्रस्तावित आर्थिक ढांचे और लालच की संस्कृति से बचने के प्रस्ताव को भी विकास के रास्ते में बाधा के रूप में देखा गया। स्थिति यहाँ तक आ पहुंची है कि न हवा साफ बची है न पानी। हमारे पूर्वजों ने कभी सोचा भी नहीं होगा कि एक दिन ऐसा भी आयेगा जब पानी, हवा, बाजार से खरीदे जायेंगे। विकास की तमाम ऊँचाइयाँ लांघ कर भी हम एक तितली का जीवन संरक्षित कर पाने में नाकाम हैं। आज पर्यावरण का जो संकट हमारे सामने खड़ा है वह अतिशय भोग और लालसा की ही उपज है।

प्रकृति से साहित्य का सम्बन्ध हवा-पानी की तरह है। पूरी दुनिया की लोक कथाओं, गीतों और प्रर्थानाओं में प्रकृति विविध रूप में अभिव्यक्त हुई है। प्रकृति की शक्ति, सौन्दर्य गान से शुरू हुई यह यात्रा आज पर्यावरण संकट से रूबरू है। एक युद्ध जैसी स्थिति हर समय हमारे समक्ष बनी हुई है। 'नई कॉलोनी' कविता में दिनेश कुमार शुक्ल लिखते हैं—

'अरावली पर्वतमाला फिर हार मानकर
आज और कुछ ज़्यादा पीछे खिसक गयी है
भय से आँखें बन्द किये मैं देख रहा हूँ
इन्द्रप्रस्थ के पास खांडव-वन को खाता
छिड़ा हुआ इक घमासान है–
जिसमें धरती हार रही है'

धरती की हार प्राणी-मात्र की हार होगी। धरती के संघर्ष में हम सभी को भागीदार बनना होगा और लौटना होगा प्रकृति की ओर। प्रस्तुत पुस्तक 16-17 मार्च 2023 को राजीवगांधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय अंबिकापुर में 'साहित्य और पर्यावरण' विषय पर आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार में पढ़े गए पर्चों का संकलन है। उम्मीद है कि पुस्तकाकार रूप में यह पर्यावरणीय सरोकारों को बढाने और हिन्दी क्षेत्र में एक सार्थक बहस को संचालित करने में मददगार होगी।

●●●

अनुक्रम

भूमिका 5

1. आदिवासी साहित्य और प्रकृति का सह-अस्तित्व —डॉ. विश्वासी एक्का 9
2. मनुष्य का जीवन और पारिस्थितिकी तंत्र —नीलाभ कुमार 15
3. समकालीन साहित्य में पर्यावरणीय चिन्तन —डॉ. के. आशा 22
4. लोक गीतों में प्रकृति के विविध रूप —अजय कुमार तिवारी 26
5. डॉ. श्यामसुन्दर दुबे के साहित्य में पर्यावरणीय चिन्तन —जीतन राम पैकरा 34
6. केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में प्रकृति एवं खेती-किसानी —डॉ. बृजेश कुमार पाण्डेय 45
7. Climate Change and Water Crisis in Eco-films *Kadvi Hawa* and *Turtle* —Dr. Bhanupriya Rohila 51
8. Ecocritical Reading of Literature : Understanding the Silencing of Nature —Dr. R.P. Singh 60
9. टिकाऊ कृषि तंत्र एवं स्मार्ट कृषि-एक सैद्धांतिक विश्लेषण —डॉ. अनिल कुमार सिन्हा, दीपिका स्वर्णकार 68
10. पर्यावरण व पारिस्थितिकी का स्वरूप एवं अंतःसंबंध —वी सुगुणा 81
11. राजस्थानी चित्रकला में प्रकृति —कमल किशोर कश्यप 88
12. साहित्य में पर्यावरण संरक्षण एवं संचेतना : एस आर हरनोट —संजीव कुमार मौर्य 92
13. पर्यावरण व गहन पारिस्थितिकी : गाँधी एवं अंबेडकर की नजर से —गोपाल 104
14. बोधकथा साहित्य एवं पर्यावरण चिंतन —सुशील कुमार तिवारी 112
15. यह नरम-हरा-कच्चा संसार —ऋचा वर्मा 122
16. मानव और प्रकृति का अंतर्संबंध तथा समकालीन हिंदी उपन्यास —प्रियंका जायसवाल, डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय 129
17. हिंदी उपन्यासों में व्यक्त पर्यावरणीय प्रदूषण एवं खतरे —अक्षतानंद पाण्डेय 135
18. प्राकृतिक संसाधन का दोहन और पर्यावरणीय संकट —डॉ. क्रेसेन्सिया टोप्पो, डॉ. सुशील कुमार टोप्पो 142
19. पर्यावरण संरक्षण : हड़प्पा और वैदिक सभ्यता —डॉ. अजय पाल सिंह 147
20. आदिवासी साहित्य में जल-जंगल और जमीन का संघर्ष —डॉ. कुसुम माधुरी टोप्पो 150
21. कालिदास के साहित्य में पर्यावरण रक्षा के उपाय —राजीव कुमार 157

22. फाँस उपन्यास में अभिव्यक्त पर्यावरण संकट और किसान जीवन
—श्रीमती स्नेहलता खलखो, डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय 163
23. महाकवि कालिदास के काव्यों में प्रकृति का स्वरूप —महेश कुमार अलेंद्र 170
24. आदिवासी कविता में पर्यावरण चिंतन —मनोरमा पाण्डेय 181
25. छत्तीसगढ़ी उपन्यास 'पखरा ले उठे आगी' में व्यक्त प्रकृति और संस्कृति का
समन्वय —डॉ. (श्रीमती) अलका पंत, श्रीमती वंदना रानी खाख़ा. 189
26. हिंदी साहित्य में प्रकृति और पर्यावरण : विजय राठौर के काव्य के
संदर्भ में —गोवर्धन प्रसाद सूर्यवंशी, डॉ. पुनीत कुमार राय 197
27. ऋषि दयानंद के साहित्य में पर्यावरण चिंतन —डॉ. अजय आर्य 208
28. भारत में पूँजीवाद और जलवायु संकट —धवल गुप्ता 214
29. पर्यावरण एवं राजनीतिक चिंतन —मुकेश कुमार सिंह 220
30. प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन —डॉ. कमलेश दुबे 225
31. आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल में प्रकृति —कसीरा जहाँ 234
32. छायावादीयों कवियों के काव्य में प्रकृति चित्रण-निराला के
संदर्भ में —शिवशंकर राजवाड़े 243
33. सत्यभामा आडिल की आधुनिक कविताओं में प्रकृति —सीमा मिश्रा 250
34. पर्यावरण संरक्षण में समकालीन हिन्दी साहित्य एवं मीडिया
की भूमिका —रश्मि पाण्डेय 254
35. आधुनिक काल में प्रकृति —प्रियंका मिश्रा 260
36. मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानियों में प्रकृति —अफीफा फातिमा शेक,
डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन 270
37. डॉ. माणिक विश्वकर्मा 'नवरंग' का रचना संसार और
प्रकृति के विविध रंग —श्रीमती संगीता शर्मा 275
38. प्रेमचंद की कहानियों में प्रकृति वर्णन—सतीश कुमार धीवर 287
39. आदिवासी साहित्य में जल, जंगल और जमीन का संघर्ष —कल्पना सिदार 293
40. अज्ञेय के काव्य में प्रकृति —ज्योति कमल 299
41. मंगलेश डबराल की कविताओं में जल, जंगल और ज़मीन
—श्रीमती रामेश्वरी दास 306
42. गांधीवादी दर्शन और पर्यावरण संरक्षण —श्रीमती निशा शर्मा 314
43. तुलसीदास के काव्य में प्रकृति चित्रण —नेहा विश्वकर्मा 319
44. Ecopoetry and Sustainable Development —Dr. Nidhi Mishra 324
45. Conservation of some Medicinal Plants in Balrampur, C.G.
—Laxmi Singh 330
46. पर्यावरण असंतुलन : 'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास के सन्दर्भ में
—लक्ष्मी के. एस. 337

●●●

आदिवासी साहित्य और प्रकृति का सह-अस्तित्व

डॉ. विश्वासी एक्का

सहायक प्राध्यापक-हिन्दी

राजमोहिनी देवी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बिकापुर

आदिवासी लेखन, उल्लास और प्रतिरोध के साहित्य के साथ-साथ प्रकृति के साथ सहअस्तित्व का भी साहित्य है। आदिवासी साहित्य लेखन में गैर आदिवासी समाज से संबंध रखने वाले साहित्यकार हैं तो आदिवासी समाज से आनेवाले साहित्यकार भी साहित्य सृजन कर रहे हैं। दूसरे वर्ग से आनेवाले साहित्यकारों की कृतियां इसलिए महत्वपूर्ण हैं कि उसमें विषय वस्तु की गहरी समझ दिखाई देती है जिससे पाठकों में विश्वास पुख्ता होता है। पाठकीय रुचि जागृत होती है। मानव ही नहीं मानवेतर जगत से सहअस्तित्व ही जीवन का आधार है यह आदिवासी साहित्यकार समझता है। अतः उनके साहित्य में सह-अस्तित्व का भाव दृष्टिगोचर होता है।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य आदिवासी साहित्य में मानव और प्रकृति के सहजीविता की पहचान के साथ सम्पूर्ण मानव जाति में सह-अस्तित्व की भावना का विकास करना है। उनमें प्रकृति के संरक्षण और संवर्धन का भाव जागृत करना है। मानव और मानवेतर जगत की पारस्परिकता से ही जीवन का विकास होता है।

प्रकृति के साथ छेड़छाड़, घटते जंगल, प्रदूषित होती नदियाँ, विलुप्त होती जीव प्रजातियां, जलवायु परिवर्तन केवल आदिवासियों के अस्तित्व का संकट नहीं वरन सम्पूर्ण मानवता और मानवेतर प्राणी जगत के लिए भी खतरा है। आदिवासी साहित्य इस खतरे की बात करता है, उसकी चिंता प्रकृति को अपने वास्तविक रूप में बनाये रखने की है, यह तभी संभव होगा जब मानव और मानवेतर जगत के बीच सहअस्तित्व का भाव हो।

आदिवासी जनजीवन पर केन्द्रित साहित्य एक विशिष्ट साहित्य है, उसकी एक विशिष्ट पहचान ही साहित्य की विभिन्न विधाओं को रूपायित कर रहा है। अलिखित वाचिक परम्परा को स्रोत बनाये हुए आदिवासी साहित्यकारों ने साहित्य लेखन की शुरूआत की।

8. कुमार संभव 1/1
9. हिमालय डिस्कवरी ऑफ़ इण्डिया का एक कार्यक्रम
10. धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः
11. मनुस्मृति
12. रघुवंश के इन्दुमती स्वयंवर में इन्दुमती की दीपशिखा से दी गयी उपमा इतनी प्रसिद्ध हो गयी कि कवि का नाम ही 'दीपशिखा-कालिदास' पड़ गया। इन्दुमती जिन-जिन राजाओं को छोड़कर आगे बढ़ती जाती थी, उनका मुँह उदास पड़ता जाता था जैसे राजमार्ग के वे-वे भवन जो दीपक के आगे बढ़ जाने पर धुँधले पड़ते जाते हैं।
    संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा
    नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः।। रघुवंश 6.67।
13. रघुवंश 1/18
14. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
    तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।
    (यजु0 31/18)
    अर्थात्, मैं उस प्रभु को जानूँ जो सबसे महान् है, जो करोड़ों सूर्यों के समान देदीप्यमान है, जिसमें अविद्या और अन्धकार का लेश भी नहीं है। उसी परमात्मा को जानकर मनुष्य दुःखों से, संसाररुपी मृत्यु-सागर से पार उतरता है, मोक्ष-प्राप्ति का और कोई उपाय नहीं है।

■

फाँस उपन्यास में अभिव्यक्त पर्यावरण संकट और किसान जीवन

श्रीमती स्नेहलता खलखो
शोधार्थी सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
शास. श्यामा प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय
सीतापुर जिला सरगुजा (छ.ग.)
डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय
शोध निर्देशक एवं अस्सिटेंट प्रोफेसर (हिन्दी)
राजीव गाँधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
अंबिकापुर (छ.ग.)

पर्यावरण संकट और किसान जीवन में मैंने संजीव कृत उपन्यास 'फाँस' को लिया है। फाँस उपन्यास महाराष्ट्र यवतमाल जिला बनगाँव का है। परंतु उपन्यास पठन के दौरान ऐसा प्रतीत होता है, यह घटना विदर्भ, आंध्रप्रदेश व कर्नाटक के किसान जीवन से लेकर भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों के किसानों की घटनाओं से जुडा है। बनगाँव जैसा कोई भी गाँव होगा जो आधा वन होगा, आधा गाँव, आधा गीला, आधा सूखा, बनगाँव के पूरब देखो तो जंगल शुरू होने लगता है, पश्चिम देखो तो पठार। कभी-कभी तो पूरब में पानी पड़ रहा होता है और पश्चिम में नहीं, सो बारिश से बचने के लिये बकरियाँ, गाय-भैंस, लोग-बाग भागकर पश्चिम आ खडे होते हैं। वैसे बारिश का क्या है, बरसी तो बरसी नहीं तो नहीं बरसी। गाँव की बस्ती मिश्रित है यहाँ ब्राह्मण, राजपूत, कुछ एक मराठा परिवार, चमरा, कुनबियाँ, मांस, मछुआरा, आदिवासी वर्ग रहते हैं। इसी गाँव का एक किसान है जिसका नाम शिवशंकर और उसकी पत्नी शकुंतला से कहानी प्रारंभ होती है। गाँव के लोगों का प्रमुख व्यवसाय खेती है। जंगल की संपति भी उनकी उपजीविका का जरिया है। हमारा भारत एक कृषि प्रधान देश है। किसान के लिये खेती व्यवसाय नहीं, बल्कि जीवन जीने का तरीका है। खेती के साथ किसानों का रक्त संबंध का रिश्ता है। किसानीपन उनके खून में है। माँ के साथ बच्चे का जो रिश्ता होता है, वही संबंध किसान का जमीन के साथ है। वह खेती

को माँ कहता है। इसलिए वह खेती करना कभी नहीं छोड सकता है। खेती उसकी जीविका का प्रमुख साधन होने के बावजूद किसान के लिये खेती उद्योग नहीं है। उद्योग का उद्देश्य पैसा कमाना होता है। इसलिये औद्यौगिक दृष्टि का अभाव हमारे देश के किसानों में है। शिबू और शकुन उनकी दो बेटियाँ सरस्वती और कलावती है, आर्थिक रूप से मजबूत न होने के कारण दोनों की पढाई बंद करा देता है। पूरे परिवार मिलकर खेती करने में जद्दोजहद लगा देता हैं फिर भी सफल नहीं हो पाते। इसलिए शकुन कहती है— 'इस देश का किसान कर्ज में जन्म लेता है, कर्ज में ही जीता है, कर्ज में हीं मर जाता है।' इनकी तरह अन्य परिवार भी इसी समस्याओं का सामना कर रहे हैं। शकुन और शिबू और शुभा का पति अमर बैंक का कर्ज चुकाने कुल सताईस हजार लेकर चल पड़े—बैंक पहुँचने पर पता चलता है कि ब्याज सहित उनका पैसा उन्तीस हजार नौ सौ साठ रू. हो गया। शिबू की स्थिति काटो तो खून नहीं हो जाता है। अचानक शिबू देखता है, शकुन के गले में हँसुली है, शकुन से हँसुली लेकर बैंक के कर्मचारी के साथ बेचकर आता है और फिर कर्ज चुकाता है। शकुन से कहता है शिबू-रानी ये कर्ज गले की फाँस है, निकाल फेंको और जिस दिन मैंने निकाल फेंका वह जैसे निहाल हो गया, गाँव भर में लडडू बँटे, गीत गाते हुए बरसात भी भींगते हुए नाचता रहा, रह-रहकर गले को देखता, चूमता-उस दिन देखा था तेरा रूप गले में हंसली निकाल रही थी तू तमतमाया चेहरा, फटकर बाहर निकल पडने की बेताब आँखे जैसे हंसुली नहीं परान खींचे चले आ रहे थे, मगर तूने छोडा नहीं, फाँस को गले से निकाल ही फेंका। घर आये। पानी बरस रहा था, वह उसी गले से लिपट गया अब तक इस फाँस ने मुझे मुझसे दूर रखा आज अब और नहीं। शिबू के पास कर्ज नहीं था, लेकिन बैंक में पहले का कर्ज अदा करने में ही तबाह होकर उसने कुएँ में डूबकर आत्महत्या कर लिया।

किसान हमारे देश का आधार स्तंभ है फाँस उपन्यास के किसान मुख्य रूप से धान, कपास, गन्ना, सोयाबीन, ज्वार गेहूँ आदि की खेती करते हैं। किसान की खेती पर्यावरण पर भी निर्भर करती है। आवश्यक्तानुसार किसान जलाऊ लकडी के लिए पेड़ काटता है किन्तु वह बदले में पेड़ लगाता है। किसानों का जीवन विभिन्न परेशानियों से घिरा हुआ है। परिवार सुखी रखने के लिए बरसात, ठंडी, गर्मी सभी जलवायु से जूझता है, फिर भी न खुद सुखी रहता है न ही परिवार को सुखी रख पाता है। किसानों के संसाधन खास कर जल, जंगल जमीन है और हमारे देश के खनिज सम्पति है। जैसे-कोयला, सोना, चांदी, इस्पात, तेल इत्यादि। परंतु बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ कृषि को समूल नष्ट कर रही हैं। भारत की कृषि को विदेश नीति ने प्रभावित व नियंत्रित किया है। अपने देश में किसानों के लिए योजनाएँ मुहैया कराने में किसानों के लिए नीति और भारत के किसानों के लिए दूसरी नीति चलाई जा रही

है। अपने देश में किसानों के लिए सब्सिडी उपलब्ध कराने वाले अमेरिका ने भारत के किसानों पर पाबंदियाँ लाने के लिए बाध्य कर दिया।

अमेरिका के कैलिफोर्निया में कॉटन उत्पादन में हैवी सब्सिडी है, वहाँ कपास के भाव 1994 के भाव से भी कम है, मगर कितने किसान आत्महत्या करते। 22 हजार करोड की सब्सिडी है। हमारे किसानों के लिए नहीं। यहाँ हुई भी तो, सिंचित भूमि के लिए है। असिंचित भूमि के लिए नहीं। मेट्रो रेल पर सब्सिडी, सब पर सब्सिडी, कृषि पर नहीं। वैश्विक नीति या कह सकते हैं तीसरी दुनिया की नीति है धीरे-धीरे देश के स्थानीय उद्योगों को खत्म कर वहाँ के लोगों को पूरी तरह परावलम्बी बनाना। यह नीति किसान को खेती छोड़ने के लिए बाध्य करने वाली थी। इसलिए खेती के क्षेत्र में विदेशी बीज, खाद और कीटनाशक दवा सभी विदेशी। इन्हीं कारणों से किसान खेतों से फसल नहीं ले पाता था और धीरे-धीरे समस्याओं के जाल में फंसता गया। बीज उत्पादन विहीन निकला एक वर्ष बीज का लाभ किसान थोडा बहुत लिया, दूसरे वर्ष थोडा कम फसल, तीसरे वर्ष बीज से फसल उत्पादन हुआ ही नहीं। रासायनिक खाद और दवाईयों की कीमत आसमान तक छूने लगी। पूर्व ही कर्ज के गर्त में फँसा किसान, आसमानी संकट में फंसा किसान, बैंक का लोन, साहूकार व्यापारी से ब्याज लेकर जीने वाले किसान की स्थिति बद से बदतर होती चली गई। अंततः किसान आत्महत्या के लिए मजबूर हो जाता है। हिन्दी में दलित समाज की पीड़ा सर्वप्रथम पन्द्रहलीं-सोलहवीं शताब्दी में भक्ति काल के संतो की रचनाओं में मुखरित हुई और उन्होंने निर्भीकता से समाज में फैली इन कुरीतियों के विरोध में अपनी आवाज बुलंद की। आदिवासियों को उनके मौलिक अधिकारों से सदैव वंचित रखा गया और किसी भी संबंध में निर्णय लेने का अधिकार उन्हें नहीं दिया गया।

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था एवं किसान जीवन की धूरी है। ग्रामीण समाज में अधिकांश लोग कृषि पर निर्भर हैं। मैं भी ग्रमीण परिवेश में पली बढी हूँ, इसलिए किसानों की समस्याओं को बखूबी समझती हूँ। किसान जीवन का यथार्थ है परिश्रम ज्यादा मुनाफा कम। खेती में सपरिवार योगदान महत्वपूर्ण रहता है महिला या पुरूष। फाँस उपन्यास में संजीव ने किसान जीवन का चित्रण किया है जिसमें, मजबूरी, अशिक्षा, गरीबी, लाचारी और आत्महत्या का रूप दिखाई देता है। भारत के किसान बहुल देश होने के बावजूद सबसे अधिक उपेक्षा किसानों की ही होती है। फाँस उपन्यास का किसान शेतकारी आन्दोलन में बाघ की तरह दहाड़ने वाला मोहनदादा बाघमारे, गले में रस्सी बाँधकर स्वयं गाय बनकर बां-बां बोलता है। शिबू ऐसा किसान है जो बैंक का कर्ज न अदा कर पाने के कारण अपनी पत्नी शकुन के एकमात्र आभूषण हँसली को गले से निकाल कर बेंचता है।

विजयेन्द्र देवेन्द्रशर्मा की एक रिपोर्ट को पढकर सुनाता है—यूरोप के सालाना बजट का 40 फीसदी खेती को देने के बाद भी हर मिनट में एक किसान खेती को छोड देता है। नेशनल फार्म से यूनियन के सर्वे से पता चलता है कि 70 से ज्यादा कृषि आधारित व्यवसाय मुनाफा कमा रहे हैं लेकिन इस खाद श्रृखला में किसान ही है, जो घाटे में चल रहे हैं, जैसा कि मैं कहता रहा हूँ कि अमेरिका और यूरोप में 80 फीसदी से ज्यादा सब्सिडी खेती आधारित व्यवसाय में चली जाती है। किसान एक मरती हुई प्रजाति बनता जा रहा है। मार्क्स कुटनर कहते हैं - 'बरसो से अमेरिका में किसान, आम आदमी की तुलना में ज्यादा आत्महत्या कर रहे हैं। ठीक आँकडा हासिल करना कठिन है, क्योंकि ज्यादातर मौतें दर्ज नहीं होती। एक रिपोर्ट के अनुसार चीन में हर साल मौत को गले लगाने वाले 2,80,000 ग्रामीणों में से 80 फीसदी लोग भूमि अधिग्रहण के शिकार बने लोग होते हैं। भारत में 1995 के बाद से लगभग 3 लाख लोग आत्महत्या कर चुके हैं। भारत में भी अमेरिका की तरह ये मामले पूरी तरह दर्ज नहीं होते हैं।' इसलिए कलावती (छोटी) कहती है—'कारपोरेट सोशल रिसपोंसिबिलिटी इन देशी -विदेशी सेठों की जिम्मेदारी आपूर्ति उतनी ही होती है जितने में उसका ग्राहक बचा रहे। किसी को भी किसानों की आत्महत्या की फिकर नहीं, किसी को भी नहीं।'

किसान हित नीति न होने के कारण किसानों को काफी परेशानियों का संघर्ष करना पडता है। जो नीति बनती भी है उनका लाभ किसान नहीं ले पाता। वह नियम केवल सरकारी फाइलों तक ही सीमित रहता है। किसान उन लाभों से वंचित रहता है। कठोर परिश्रम कर अन्न उगाता है, सबका पेट भरता है, परंतु स्वयं भूखे पेट सोने को मजबूर है। सरकारी नीतियों में बड़ी विडम्बना नजर आती है। किसान आत्महत्या करता है, सरकार उसे पात्र या अपात्र मान किसान को मुसीबत में डाल देती है। पंचनामा करते घूस मिला तो किसान पात्र माना जायेगा अन्यथा वह अपात्र हो जाता है। स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेज भारतवासियों को प्रताड़ित करते रहे, स्वतंत्रता पश्चात सेठ, महाजन, साहूकार, जमींदार ने किसानों पर अपना अधिकार बना लिया।

फाँस उपन्यास में अदम्य साहस का परिचय देने वाले पात्रों की कमी नहीं है। जो गाँव घर की विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए, प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने वजूद का अहसास कराते हैं—जैसे शिबू, शकुन, कलावती, सरस्वती, विजेन्द्र, सिंधु ताई, अशोक, मल्लेश, दादाजी खोबरागडे, और खिलदंड नाना। सुनील जैसे महान गाँव के हितैषी थे। जिन्होने हर संभव प्रयास किया गाँव के विकास का। जैसे हम पाते हैं शकुन, शिबू के मौत के पश्चात बिल्कुल अकेली हो जाती है। जीवन के तमाम संकट, दुख और असुविधाओं के झेलते हुए-अपना जीवन शराब उन्मूलन में झोंक देती है। इसी प्रकार शकुन की छोटी

पुत्री कला—माँ बाप का कद्र करती है किन्तु किसी बंधन में बँधकर अपने वजूद को खोना, छोटी को भाता नहीं है। अशोक से मिलकर हमेशा वह पढ़ाई-लिखाई की चर्चा करती रही यद्यपि अशोक की माँ ने इस बात पर पुरजोर विरोध जताया फिर भी इस बात को नजरअंदाज करती रही। शादी के बाद ससुराल की पाबंदियों को आत्मसात करने के कारण ससुराल छोड़ देती है। परंतु वह अपने अधिकारों के प्रति सहज रहती है। छोटी फाँस उपन्यास की शिक्षित पात्र है। अपने विवेक से काम लेकर बांसोडा ग्राम में आजादी के 65 वर्ष बाद बिजली लाने का श्रेय कलावती याने छोटी को जाता है। छोटी बिजली ऑफिस में आवेदन देकर आती है—'यदि सात दिनों के अंदर विद्युत की व्यवस्था हमारे गाँव न हुई तो हम कोई भी कदम उठाने को बाध्य होंगे।'

आशा अपने पति सुरेश बानखेड़ा और अपनी बेटी अजंता और एलोरा का लालन-पालन करती रही। खून पसीना बहाकर सफेद कपास की खेती में सफल होती है, तत्पश्चात वह अपने पति को कपास बेचने भेजती है। कपास के मूल्य के निर्धारण में समय लगने के कारण सुरेश कपास को गाड़ी में पुनः वापस घर लाता है। गाड़ी कपास की गठरी को बाहर छोड़ देती है। आशा उस कपास को बेमौसम पानी से बचाने का पूरा प्रयास करती रही किन्तु उन्हें भींगने से नहीं बचा पाई आशा कर्ज, तंगी, ब्याज में गुजर बसर करते हुए इस नुकसान को बर्दास्त नहीं कर पायी और सामने रखे कीटनाशक सल्फास को पीकर जीवन की इहलीला को समाप्त कर देती है— 'चुब्ब चुब्ब पानी पीता रहा कपास चुब्ब चुब्ब पानी में डूबता रहा मन। अवसाद की एक फीकी–फीकी सी तासीर गाढ़ी होती गयी यह सब मेरे कारण हुआ।' फाँस उपन्यास की संघर्सशील महिलाओं में मुख्य रूप से शकुन, कलावती, सरस्वती, आशा, सिंधु ताई और मंजुला आदि हैं।

शकुन्तला शिबू जी की पत्नी है जिसे प्यार से लोग शकुन कहकर पुकारते हैं। इसने अपने परिवार के लिए काफी संघर्ष किया, इसमें आदर्श पत्नी, माता, श्रमशीलता के गुण के साथ अदम्य जुझारूपन स्वभाव नजर आता है। जब मनमोहन सिह प्रधानमंत्री थे उस समय पैकेज के तहत विदर्भ के किसानों को 20000.00 की गाय को किसान से 500.00 रू लेकर गाय दिया गया। गाय मनमोहक थी 20-20 लीटर दूध देती थी। तुकाराम जब गाय लिया पूरा परिवार खुश था, किन्तु गाय का दूध खपत करना, उसे बेचना तुकाराम के लिए समस्या बन गया। उसी प्रकार अन्य किसानो ने गाय लिया, परंतु विदर्भ की सूखी धरती पर मवेशियों को खिलायेंगे क्या और दूध को बेचेंगे कहाँ। नौ हजार संग्रह कर दो दो मनमोहनी गाय लेकर, यहाँ के किसानों का क्या लाभ हुआ ? लाभ कहीं हुआ, तो बिचौलियों को। योजना मनमोहन सिंह की ठीक थी, गलत हुआ इसका स्थानीय नियोजन। यहाँ फसल के

लिए पानी नहीं, जहाँ किसान कर्ज में डूबे हुए हैं, जहाँ दूध को ग्राहक के पास पहुँचाने का उपाय न हो, वहाँ गाय का धंधा एक बोझ नही ंतो और क्या है। 'काश हम जैसे किसानों से पूछते सबका उध्दार करती है गौमाता लेकिन यहाँ तो गलत हीं गलत है, इसलिए कि कोई भी चीज अपनी माटी-पानी की नहीं। विदेशी बीज, विदेशी कर्ज, विदेशी गाय, विदेशी नीति और यहाँ का सूखा किसान, सूखी धरती किसानों के पास खाने के कुछ पैदा होता नहीं। एक फसलिया खेत। जोआरी बोथे नहीं, क्या है अब कपास खाकर मनमोहनी गाय का दूध पीकर जिंदा रहना है। इसलिए नशे की हालत में किसान कहते हैं—आपस में वे इस तरह बहकने लगे जैसे शहंशाह हों एकदम बुद्धू है सरकार। गाय तो बडे सेठ को देना चाहिए जो उसे खिला सके, पिला सके, जिला सके। हमारे लिए तो बकरी ही भली, जो खुद चर कर चली आती।' इन्हीं परिस्थितियों के कारण किसान मंहगी गाय को गाँव के सेठ महाजन को औने- पौने दाम में बेंचकर पुनः कर्ज के भार में दब जाते और आत्महत्या का रास्ता चुनते हैं।

बिज्जू से एक बुजुर्ग कहते हैं—'हमने सोचा कि सरकार और सरकारी कर्ज पर भरोसा करेंगे तो मारे जायेंगे, देने वाले का हाथ हमेशा ऊपर, और लेने वाले का हमेशा नीचे।' मेंडालेखा आदर्ष गाँव है वहाँ पर ना धर्म जाति का बंधन न किसी संपत्ति पर एकाधिकार न दारू न अन्य कोई बुराई इसलिए राव साहब कहते हैं—'जो-जो चीजें इंसान के इंसान से इंसान के प्रकृति ओर पर्यावरण से जुदा करती है अपने अंखुआने से पहले ही उनका निषेध कर दिया है। दिल्ली मुम्बई हमारी सरकार हमारे गाँव में, हम ही सरकार इस सरकार को सलाम।

किसानों की समस्याओं से निजात दिलाने के लिए सरकार को उनकी सुविधाओं को ध्यान में रखकर नई-नई योजनाएँ बनाना है। चाहे वो बैंक कर्मचारी, नेता, शासन-प्रशासन, बिचौलियों से बचाकर, लाभ किसान को देना है। किसान को मौसम पर आश्रित न होकर बदलते समय के साथ आधुनिक तकनीकी से जुडकर योजनाबध्द तरीके से खेती करना पड़ेगा, प्रकृति के प्रकोप से खेती को बचाने के लिए नलकूप, कुंआ, तालाब, बोरबेल का सहारा लेना पडेगा तभी किसान अपने फसल का मुनाफा प्राप्त करेगा। बदलते परिवेश के साथ किसान को रबी और खरीफ दोनों फसल का उत्पादन करना पड़ेगा। जिससे किसान की आर्थिक स्थिति मजबूत होगी और उनका मन आत्महत्या की ओर नहीं जायगा। उपन्यास का जिम्मेदार पात्र चाहे वह शिबू , सूनील और आशा बानखेडे हो कर्ज के साथ-साथ फसल की बर्बादी आर्थिक क्षति की वजह से आत्महत्या को गले लगाए हैं। फाँस उपन्यास का शिक्षित पात्र विजयेन्द्र बच्चों की शिक्षा, शादी, खाद, बीज, कीटनाशक बैंक से लेना उचित

मानते हैं जिससे किसान कर्ज से मुक्त होगा, पर्यावरण की सुरक्षा करते हुए भूमंडलीकरण से बचना होगा, किसानों के सहयोग के लिए शासन को फसल बीमा योजना, किसान पेंशन योजना, किसान हित में अन्य सुविधा, जल हौज अनुदान योजना का लाभ दिलाना होगा।

संदर्भ :

आधार ग्रंथ-

1. संजीव, फाँस, वाणी प्रकाशन द्वितीय 2016
   पृ. सं.- 17, 15, 63, 108, 107, 159, 196- 197, 15, 107, 134, 144, 67, 69, 71, 242, 243।

सहायक ग्रंथ-

1. गोयल कशिश एवं शाक्य अमिताभ, हिन्दी आलोचना, साहित्य सरोकार
2. किंकर राम पाण्डेय 2016 हिन्दी साहित्य में किसान सपने संघर्ष और चुनौतियाँ 21वीं सदी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
4. सिंह किरण 2019 संजीव कृत फाँस उपन्यास में किसान एवं आदिवासी संघर्ष, विकास प्रकाशन, कानपुर।

■